इकाई 24 प्रशासन और विधि

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

पिछली इकाई (इकाई संख्या 23) में आपने 1757 से लेकर कंपनी शासन के अंत तक भारत में अंग्रेज़ी शासकों द्वारा लागू किए गए संवैधानिक प्रावधानों का परिचय प्राप्त किया था। इस इकाई में इसी बहस को आगे बढ़ाते हुए हम इस बात पर विचार करेंगे कि किस प्रकार अंग्रेज़ों ने न्यायिक और प्रशासनिक ढांचे का निर्माण किया। इसमें एक तरफ शासकों की खास ज़रूरतों और वैचारिक प्रतिबद्धता का अवलोकन किया जाएगा और दूसरी तरफ प्रशासन के क्षेत्र में हुए विभिन्न बदलावों और प्रयोगों की सूचना दी जाएगी। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अंग्रेज़ों की प्रशासनिक नीति निर्धारण के पीछे निहित विचारों और दृष्टिकोणों पर प्रकाश डाल सकेंगे,
- इस नीति के तहत संस्थागत संरचना के विकास को रेखांकित कर सकेंगे, और
- भारत में अंग्रेज़ों द्वारा लागू किए गए प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था का मूल्यांकन कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने अध्ययन किया कि किस प्रकार अंग्रेज़ों ने अपनी लगातार विजयों से शनैः शनैः पूरे देश पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। ईस्ट इंडिया कंपनी मात्र एक व्यापारिक संस्था न रहकर राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरकर सामने आई। केवल विजयों से साम्राज्य पर ज्यादा समय नियंत्रण स्थापित कर पाना संभव न था। इसे कायम रखने के लिए एक बृहद् प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। अतः इस इकाई में खास कर विचारों और संस्थाओं पर विचार किया जा रहा है। पहले हम इस बात पर विचार करेंगे कि अंग्रेज़ों ने भारत पर शासन करने की क्या योजना बनाई थी। इसके बाद हम उन प्रशासनिक संस्थाओं पर प्रकाश डालेंगे, जिसका निर्माण भारत पर नियंत्रण और शासन स्थापित करने के लिए किया गया था।

24.2 पृष्ठभूमि

भारत के विशाल भू-क्षेत्र पर व्यापक प्रशासनिक संरचना की सहायता से नियंत्रण स्थापित किया गया और इसके लिए विभिन्न प्रकार के क़ानून बनाए गए। इस संरचना पर विस्तारपूर्वक विचार करने के पहले हम इन प्रशासनिक प्रयोगों की पृष्ठभूमि की जानकारी प्राप्त करेंगे। प्रशासन और कानून के क्षेत्र में आए ये परिवर्तन कुछ खास विचारों के प्रतिफलन थे, जिनका विकास उन्नीसवीं शताब्दी में ब्रिटेन में हुआ। ये प्रशासनिक परिवर्तन भारत में अंग्रेज़ों के हितों को ध्यान में रखकर लागू किए गए थे। आइए, इन दोनों पहलुओं पर विचार करें।

24.2.1 प्रशासन संबंधी ब्रिटिश विचार

अंग्रेज़ों ने एकाएक और शून्य में नई प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था लागू नहीं की थी। यह व्यवस्था लगभग आठ दशकों के प्रयत्न का परिणाम थी। इस दौरान कई कदम उठाए गए, कई अधिनियम बनाए गए। इन्हें ब्रिटिश प्रशासकों और चिंतकों ने काफी समझ-बूझ के बाद बनाया था। इनमें से कई प्रावधान और नीतियां अभी तक लागू हैं। यह शून्य में पैदा नहीं हुआ था, बल्कि इसके पीछे 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटेन में हुए बौद्धिक आंदोलन का हाथ था। इसमें भारत के ब्रिटिश शासन पर विशेष ध्यान दिया गया।

अंग्रेज़ों ने आरंभ में जिस विकास की नीति की शुरुआत की, उस पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। कार्नवालिस द्वारा भारत के विकास के लिए ब्रिटेन में लागू भू-व्यवस्था को ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आरोपित करना इसी तथ्य को प्रमाणित करता है। कार्नवालिस ने ब्रिटेन में स्थापित कुलीन तंत्र की खोज भारत में की और ज़मीदारों को इसका पर्याय मान लिया। इन ज़मीदारों को एक ट्रस्टी के रूप में कार्य करना था, जिनके नेतृत्व में व्यापार और उत्पादन को बढ़ावा दिया जाना था। इसके साथ-साथ ब्रिटेन में लागू कानून और प्रशासन व्यवस्था यहां थोपी गई। इसके अनुसार भूमिपति कुलीनतंत्र के नेतृत्व में भारत का विकास संभव था और इसके लिए प्रशासन के राजस्व और न्यायिक कार्यों को अलग-अलग खाकों में बांटा गया। (देखिए खंड IV और आगे आने वाला भाग 24.3)

उपयोगितावादी विचारधारा और दृष्टिकोण के विकसित होने के पूर्व कार्नवालिस ने अपनी नीतियां निर्धारित कीं। मैकाले उदारवादी था। उसके विचार धर्म प्रचार संबंधी प्रयत्नों और 1830 और 1840 में पनप रहे व्यवहारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थे। अतः उसने कानून निर्माण (देखिए भाग 24.3) के लिए उत्साह से कार्य किया। हालांकि संस्थानीकरण के इस पक्ष को वह स्वीकार करता था, परंतु वह इस बात में विश्वास नहीं रखता था कि इससे भारत का सुधार संभव था।

कार्नवालिस और मैकाले के बीच की एक बौद्धिक धारा "उपयोगितावाद" थी। (खंड 3 की इकाई 13 में आप इसके बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं।) जेम्स मिल, जेरेमी बेंथम, डेविड रिकार्डो, और जॉन स्टुअर्ट मिल इसके प्रमुख व्याख्याता थे। इन्होंने भारतीय मामले में गहरी रुचि दिखाई और भारत में लागू की गई प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था पर इनका विशेष प्रभाव था। उपयोगितावादियों ने भारत पर नियंत्रण स्थापित करने और शासन करने के तरीके सुझाए। उनके विचार धीरे-धीरे ब्रिटेन में स्वीकृत होते गए, क्योंकि ये व्यापारियों, उत्पादकों और मिशनरियों के हितों के पोषक थे। उनके विचार क्या थे और भारत की समस्या का क्या समाधान उनके पास था?

- उनके अनुसार भारतीय समाज में बुद्धिवाद और व्यक्तिवाद जैसे मूल्य बिल्कुल नहीं थे, जो किसी भी आधुनिक समाज के निर्माण के लिए ज़रूरी होते हैं।
- भारत जैसे परंपरागत और पतनोन्मुख समाज को उपयुक्त कानून बनाकर ही सुधारा जा सकता है। परंपरागत समाजों में प्रचलित "दैनिक न्याय" के स्थान पर "मानवीय न्याय" को लागू करना होगा। तात्पर्य यह कि ब्रिटिश प्रशासन न्याय और एकरूपता की अपनी नीति का सहारा लेकर भारत को एक प्रगतिशील और जागरूक समाज में बदल सकता है।

- पर मिल ने शिक्षा को सुधार का अस्त्र मानने से इंकार कर दिया। उसने सरकारी संरचना के भारतीयकरण का भी विरोध किया। उसके अनुसार, भारतीय अपना आधुनिकीकरण करने में सक्षम नहीं हैं। अतः मिल ने भारतीयों को प्रशासन में हिस्सेदारी देने की अवधारणा को नामंजूर कर दिया। उपयोगितावादियों ने एक ऐसी सरकार की स्थापना की सलाह दी, जिसके कर्ता-धर्ता अंग्रेज़ हों।

दूसरे शब्दों में, उन्नीसवीं शताब्दी के बाद जैसे-जैसे यूरोपीय समाज को भारत की जानकारी मिलने लगी, वैसे-वैसे भारतीय समस्या और समाधान के मसले पर विचारकों, विद्वानों और प्रशासकों के बीच बहस चलने लगी। अपने बने-बनाए विचारों और समर्थकों, भारत में उनकी रुचि और भारत की समस्या के समाधान के लिए बने बनाए फार्मूले (कराधान, सरकार और न्यायिक प्रशासन के स्वरूप संबंधी) के कारण उनका स्वर प्रभावी ढंग से उभर कर सामने आया। 1819 ई. में जेम्स मिल को ईस्ट इंडिया कंपनी के कार्यकारी परिषद में शामिल किया गया। इससे उपयोगितावादियों के लिए भारत में अपनी नीतियों को लागू कराने में आसानी हो गई। उनके विचारों को समस्या और समस्या के समाधान के ढांचे में रखकर देखा जा सकता है।

- भारतीय समाज पिछड़ा, पतनोन्मुख, अधोगामी और निरंकुश था। कुछ लोग ज्यादा लोगों का शोषण करते थे और व्यक्तिगत सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी।
- इसके कारण गरीबी थी और गरीबी के परिणामस्वरूप अपराध का बोलबाला था।
- गुलामी और अंधविश्वास भारतीय जनता की विशेषता थी।

समाधान

- अच्छी सरकार की स्थापना और उपयुक्त कानून और कड़े प्रशासन की व्यवस्था। इसी प्रकार, समाज का विकास संभव था।
- इससे व्यक्ति को निरंकुश तंत्र, रीति-रिवाजों और सामूहिक स्वामित्व (इसे मिल आदिम समाज का लक्षण और आधुनिक समाज के निर्माण में बाधक मानता था) से मुक्ति मिलेगी।
- इससे व्यक्तिगत पूंजी और श्रम को पूरा मौका मिलेगा और व्यक्तिगत अधिकार और स्वामित्व पर बल दिया जा सकेगा (भारतीय समाज की विशेषता सामूहिक स्वामित्व के विपरीत)।
- इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार को कानूनी तौर पर व्याख्यायित और संरक्षित करना जरूरी था।

संक्षेप में कहा जाए तो उपयोगितावादी सोच "विधि द्वारा शासन" की वकालत करती थी। कानूनों को वैज्ञानिक तरीके से परिभाषित कर उन्हें नियमबद्ध रूप में लिखकर प्रस्तुत करना था। इन कानूनों को लागू करने के लिए स्थानीय तौर पर न्यायालय स्थापित किए जाने चाहिए ताकि कानून तक साधारण आदमी पहुंच सके। इसी प्रकार, एक व्यक्तिगतवादी प्रतियोगिता पर आधारित समाज निर्मित हो सकता था।

24.2.2 अंग्रेज़ों के स्वार्थ

अब तक आप अंग्रेज़ों के कानून संबंधी विचार और समाज से अच्छे संबंध को समझ गए होंगे। परंतु इसके साथ-साथ भारत में स्थापित ब्रिटिश कानून और प्रशासन के पीछे छिपे ब्रिटिश स्वार्थों को नज़रअंदाज कर देना भी गलत होगा। भारत में प्रशासन की एकरूपता अंग्रेज़ों के स्वार्थों के अनुकूल थी। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए अंग्रेज़ों ने नए-नए कानून बनाए और प्रशासन व्यवस्था लागू की। उनके हितों में जैसे-जैसे परिवर्तन होता गया, उसी के अनुसार प्रशासनिक ढांचा भी बदलता गया।

जैसा कि आप जानते हैं, पूरे शासन काल में अंग्रेज़ों के स्वार्थ एक जैसे नहीं रहे। ब्रिटिश शासन के विभिन्न चरणों में उनमें परिवर्तन आता रहा। विभिन्न चरणों में वे ब्रिटेन स्थित सामाजिक समुदाय के स्वार्थों से भी प्रेरित हुए। अपने प्रथम चरण में 1813 तक भारत में अंग्रेज़ों के हित निम्नलिखित मुद्दों तक केंद्रित थे:

- भारत के साथ व्यापार में ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार और अन्य यूरोपीय देशों का निष्कासन।
- कराधान द्वारा वित्तीय स्रोतों पर नियंत्रण।

इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति स्थापित संस्थाओं और प्रशासनिक ढांचे को बिना बदले ही हो सकती थी। इस समय, ब्रिटिश शासक परंपरागत शासकों से बहुत भिन्न नहीं थे, जिनका एकमात्र उद्देश्य कृषि उत्पादन का अधिशेष प्राप्त करना होता था। अतः इस समय एकरूप प्रशासनिक संरचना स्थापित करने की कोशिश नहीं की गई, न ही पुरानी व्यवस्था को सुधारने का प्रयास किया गया। न्यायिक व्यवस्था और प्रशासन में किसी प्रकार का आधारभूत परिवर्तन नहीं किया गया। प्रशासन के क्षेत्र में केवल राजस्व वसूली से संबंधित परिवर्तन किए गए ताकि आसानी से राजस्व की वसूली की जा सके। इस चरण में भारत के लिए आधुनिक न्यायिक व्यवस्था या एकरूप प्रशासनिक संरचना की आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि अभी यह ब्रिटिश हितों के लिए आवश्यक नहीं था।

1813 के बाद इस परिदृश्य में परिवर्तन आया। आप जानते हैं कि औद्योगिक क्रांति के कारण ब्रिटिश अर्थव्यवस्था और समाज परिवर्तन के दौर से गुज़र रहा था। व्यापारिक निगमों का स्थान औद्योगिक बुर्ज़आ वर्ग ले रहा था और ब्रिटिश समाज में इसका ज़ोर बढ़ गया था। भारतीय व्यापार से ईस्ट इंडिया कंपनी का एकाधिकार धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था। अब भारत में ब्रिटिश हित कम्पनी के हितों से निर्देशित नहीं होते थे, बल्कि औद्योगिक पूंजीपति वर्ग का हित अब सर्वोपरि हो गया था। ब्रिटिश पूंजीपति भारत को एक बाज़ार के रूप में विकसित करना चाहते थे जहाँ उनके माल की खपत हो सके। इसके अतिरिक्त, वे भारत से अपने उद्योगों के लिए कच्चा माल (जैसे जूट; कपास आदि) और खाद्यान्न तथा अफीम उपलब्ध करना चाहते थे।

इसके लिए यह जरूरी था कि भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज के अंदर प्रवेश किया जाए और ब्रिटेन के अतिरिक्त अन्य देशों के साथ भारत के व्यापार पर नियंत्रण स्थापित किया जाए। अभी भारत से एक नई भूमिका अदा करने की अपेक्षा की गई। परंपरागत प्रशासनिक संस्थाओं के रहते भारत यह भूमिका अदा नहीं कर सकता था। नई ज़रूरतों के अनुरूप उन्हें बदलना जरूरी हो गया। इसके बाद, भारतीय प्रशासन का बदलाव शुरू हुआ। इसपर हम अगले भाग में विचार करेंगे। आधुनिक व्यापार को बढ़ाने, बाज़ार अर्थव्यवस्था कायम करने के लिए, मुक्त वाणिज्यिक संबंध कायम करने के लिए और आर्थिक गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने के लिए समूची विधि व्यवस्था में परिवर्तन करना और नए कानून बनाना जरूरी हो गया। और इस प्रकार, भारतीय प्रशासन और न्यायिक व्यवस्था का बदलाव शुरू हुआ। इसके बारे में अगले भाग में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) उपयोगितावादियों के अनुसार भारतीय समाज की समस्याएं क्या थीं और इनका समाधान कैसे किया जा सकता था? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

2) उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेज़ों को प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता क्यों पड़ी? दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

24.3 संस्थागत संरचना

कानून और प्रशासन संबंधी प्रश्नों पर विचार करने के बाद, आइए हम उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान उभरने वाले प्रशासनिक संस्थाओं के ढांचे पर विचार-विमर्श करें और यह भी मालूम करें कि ऊपर जिन विचारों का उल्लेख हमने किया है, उसे किस हद तक ग्रहण किया गया।

24.3.1 न्यायिक व्यवस्था

1793 ई. में कार्नवालिस के समय से ही प्रशासनिक ढांचे के निर्माण का काम शुरू हो गया और यह कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक चलता रहा। कार्नवालिस के शासन काल में न्यायिक व्यवस्था सहित प्रशासन की सभी शाखाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए। इसमें सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन था राजस्व और नागरिक प्रशासनिक विभागों को अलग-अलग करना, कहने का तात्पर्य यह कि न्यायिक और कार्यकारी विभाग को अलग-अलग कर दिया गया और कई न्यायालयों का निर्माण हुआ।

नागरिक और राजस्व प्रशासन को अलग-अलग करने का मतलब यह हुआ कि कलक्टर अभी तक न्याय और राजस्व, दोनों क्षेत्रों को देखता था, अब उसके न्यायिक अधिकार समाप्त कर दिए गए और उसका मुख्य काम राजस्व तक सीमित हो गया। अब राजस्व की वसूली और न्याय प्रशासन की देखभाल इस उद्देश्य से नियुक्त अलग-अलग पदाधिकारियों के जरिए होनी थी। अब कलक्टर के जिम्मे केवल राजस्व की वसूली करना रह गया और नागरिक और अपराधिक मामलों से निपटने के लिए जज मैजिस्ट्रेट की नियुक्ति की गई। नई न्याय व्यवस्था का ढांचा कुछ इस प्रकार था:

नागरिक अदालतें

सदर दीवानी अदालत
प्रांतीय अदालत I-IV

सिविल सर्विस से नियुक्त ज़िला मैजिस्ट्रेट के अधीन ज़िला अदालतें

रजिस्ट्रार की अदालत

अधीनस्थ अदालतें (इसका प्रधान भारतीय न्यायाधीश होता था, जिसे मुन्सिफ या अमीन कहते थे)

फौजदारी अदालतें

सदर निजामत अदालत (मद्रास, बम्बई में सदर फौजदारी अदालत)

सर्किट अदालत (सिविल सर्विस के अधिकारियों की अध्यक्षता में) स्थानीय अदालतें (भारतीय मैजिस्ट्रेटों की अध्यक्षता में, इन्हें मद्रास में प्रधान सदर अमीर कहा जाता था)।

अदालतों की इस शृंखला का प्रयोग सबसे पहले बंगाल में किया गया। वस्तुतः बंगाल ब्रिटिश शासन की प्रयोगशाला थी, जहां वे अपनी प्रशासन व्यवस्था को लागू कर जांच सकते थे और फिर देश के अन्य भागों में इसे लागू कर सकते थे। इस विचार-विमर्श को आगे बढ़ाने के पूर्व, आइए हम ऊपर दिए गए चार्ट को समझ लें। नई न्यायिक व्यवस्था में सदर दीवानी अदालत और सदर निजामत अदालत शीर्षस्थ संस्थाएं थीं और इनका मुख्यालय कलकत्ता था। इनके नीचे प्रोविंशियल कोर्ट ऑफ अपील (नागरिक अदालत के मामले में) और कोर्ट ऑफ सर्किट (फौज़दारी अदालत के मामले में) थे। इनकी स्थापना कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद और पटना में की गई। इनके नीचे रजिस्ट्रार अदालतें थीं, इन सभी अदालतों के प्रमुख अंग्रेज़ अधिकारी थे। भारतीयों को मुंसिफ, अमीन जैसे छोटे पद मिला करते थे, काज़ी और पंडित मुस्लिम और हिन्दू कानून संबंधी परामर्श न्यायाधीश को दे सकते थे।

इस प्रकार, भारत में नई न्यायिक संरचना की स्थापना हुई। आने वाले समय में यह संरचना और विकसित हुई। इसमें कई परिवर्तन किए गए और भारत के कई भागों में इसकी स्थापना हुई। आइए, उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत में विकसित न्यायिक संरचना की प्रमुख विशेषताओं का अवलोकन करें।

इसकी एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जो नई कानून-व्यवस्था बनाई गई, वह परंपरागत और धार्मिक कानूनों के प्रति काफी सहिष्णु थी। फौजदारी अदालतों ने मुस्लिम फौजदारी कानून को बिल्कुल समाप्त नहीं कर दिया, बल्कि इसमें थोड़ा-सा सुधार करके इसकी कठोरता कुछ कम कर दी। इसी तरह, नागरिक अदालतों में स्थानीय लोगों द्वारा अपनाई जाने वाली रीति-रिवाजों को बिल्कुल नज़रअंदाज नहीं कर दिया। वस्तुतः अभी ईस्ट इंडिया कंपनी व्यवस्था को पूरी तरह बदलना नहीं चाहती थी। केवल आंशिक परिवर्तन किए गए। न्याय की स्थापित संस्थाओं और राजस्व वसूली की संस्थाओं को समाप्त नहीं किया गया।

न्यायिक व्यवस्था की दूसरी विशेषता थी कानूनों की बनावट। अधिनियम बनाकर और पुराने कानूनों को नियमबद्ध करके कानून को व्यवस्थित कर लिया गया। यह उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान अंग्रेज़ों की कानून को नियमबद्ध करने की इच्छा के अनुरूप ही था। परंपरागत व्यवस्था के तीन आधार थे:

1) परंपरागत और सामाजिक प्रथाओं पर आधारित कानून,
2) शास्त्र और शरीयत जैसे धर्म आधारित कानून; और
3) शासकों की इच्छा और शक्ति पर आधारित कानून।

इसके विपरीत, अंग्रेज़ों ने कानून की नई व्यवस्था कायम की। उन्होंने स्थापित कानून को नियमबद्ध किया, उसे व्यवस्थित किया। अब कानून की न्यायिक व्याख्या की जा सकती थी और उसमें बदलाव भी लाया जा सकता था। 1833 के चार्टर अधिनियम के द्वारा कानून बनाने का अधिकार गवर्नर जनरल काउंसिल को दे दिया गया। इसी साल एक विधि आयोग की स्थापना भी हुई। इसकी अध्यक्षता लार्ड मैकाले ने की। इसने भारतीय दंड संहिता का निर्माण किया, जिसे संपूर्ण भारत देश में लागू होना था। अतः, पहली बार एक ऐसी विधि व्यवस्था सामने आई, जो प्रत्येक भारतीय पर समान रूप से लागू हो सकती थी।

इस पूरी न्याय व्यवस्था के पीछे दो सिद्धांत (कानून का शासन और कानूनी समानता) काम कर रहे थे।

भारत में कानून के शासन की स्थापना का विचार उपयोगितावादियों के विचारों का प्रतिफलन था। उन्होंने तीन प्रमुख समस्याओं के समाधान के लिए कानून के शासन को आवश्यक समझा था:

1) व्यक्ति के हाथ में मनमाने असीमित अधिकार होते थे, जिसका वह दुरुपयोग कर सकता था।

2) व्यक्तिगत अधिकारों की कोई परिभाषा नहीं दी गई थी।

3) कानून अलिखित थे और इनके पालन का कोई स्पष्ट निर्देश भी नहीं था।

कानून के शासन का तात्पर्य यह था कि अब प्रशासन कुछ बने-बनाए कानून पर आधारित होगा, जिसमें लोगों के अधिकार, विशेषाधिकार और कर्तव्यों का उल्लेख होगा, अब यह शासक की मर्जी के अनुसार नहीं चलेगा। सैद्धांतिक तौर पर ही सही, परंतु इसमें कोई कानून से बड़ा नहीं था। सैद्धांतिक तौर पर कानून के रखवाले भी अगर कानून तोड़ेंगे तो उनके लिए भी वही कानून लागू होगा और उन्हें भी न्यायालय में उपस्थित होना होगा। एक बार कानून बन जाने पर शासक के हाथ भी बंध जाते थे। परंतु कानून को इस ढंग से बनाया और व्याख्यायित किया जाता था कि उसके जरिए जनता के शोषण की काफी गुंजाइश रहती थी। जैसाकि अक्सर होता था, प्रशासनिक पदाधिकारी मनमानियां किया करते थे और उसे कानून का जामा पहना दिया करते थे, उन्हें इसके लिए कानून का उल्लंघन नहीं करना पड़ता था। "कानून के शासन" का सैद्धांतिक आधार पुलिस या सेना के मामले में निरर्थक मालूम होता था, जो हमेशा इसका उल्लंघन करते थे। पुलिस और प्रशासनिक अधिकारी अभी भी गैर-कानूनी कार्य धड़ल्ले से करते थे। वस्तुतः कानून का शासन अपने आप में शोषण और शक्ति का कानूनी अधिकार बन गया।

कानून के समक्ष समानता का अर्थ यह था कि बिना किसी जातिगत, सामाजिक आदि भेदभाव के सभी कानून की नज़र में समान हैं। परंतु कानून के समक्ष समानता का यह सिद्धांत यूरोपवासियों पर लागू नहीं होता था। उनके लिए अलग अदालत और कानून की व्यवस्था थी। फौजदारी के मामले में केवल यूरोपीय न्यायाधीश ही उनकी सुनवाई कर सकता था। वस्तुतः व्यावहारिक तौर पर कानून के समक्ष समानता लागू करना संभव ही नहीं हो सकता था। परंतु इसके द्वारा भारतीयों के बीच राष्ट्रीय समानता आई।

कानून का शासन और कानून के समक्ष समानता की प्राप्ति के लिए भारतीयों को भारी कीमत चुकानी पड़ी। न्याय बहुत मंहगा हो गया और साधारण व्यक्ति की पहुंच से बाहर हो गया। अब अदालती शुल्क अदा करना पड़ता था, जो काफी ज्यादा था। 50,000 रुपए की सम्पत्ति के मामले में अदालत में कार्रवाई शुरू करवाने के लिए 1000 रुपए अदालती शुल्क जमा करवाना पड़ता था। इसके अलावा, नए कानून काफी पेचीदे थे और इन्हें साधारण व्यक्ति समझ नहीं सकता था। अतएव वकील रखने पड़ते थे, जिससे खर्च और बढ़ जाता था। न्याय प्राप्त करने के लिए अब लोगों को ज़िला केंद्रों (शहरों) अथवा प्रांतीय केंद्रों में जाना पड़ता था। इसके अलावा, अब न्याय प्रक्रिया काफी लंबी खिंचती थी और कभी-कभी तो यह वर्षों लटकी रहती थी। उदाहरण के तौर पर मद्रास की ज़मींदारी के मामले को ही लिया जा सकता है। इसका उत्तराधिकार संबंधी मामला और ऋण अदायगी से संबंधित मसला 1832 में न्यायालय के समक्ष रखा गया। इसका फैसला 64 वर्ष बाद यानी 1896 में हुआ।

इस न्याय व्यवस्था की एक विशेषता यह थी कि इससे पूरे भारत वर्ष में एक न्याय व्यवस्था कायम हुई और इससे देश के एकीकरण का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। अब भारत को एक इकाई (न्यायिक तौर पर ही सही) के रूप में देखा जा सकता था। भारत पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए अंग्रेज़ों ने विधि तंत्र का सहारा लिया। कालांतर (20वीं शताब्दी) में इसी विधि तंत्र का उपयोग राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान राष्ट्रवादी नेताओं ने नागरिक स्वतंत्रता और अधिकार की रक्षा के लिए किया और कानून का सहारा लेकर उन्होंने सरकारी तंत्र को चुनौती भी दी।

24.3.2 प्रशासनिक व्यवस्था

भारत में ब्रिटिश प्रशासन का एक प्रमुख उद्देश्य कानून और व्यवस्था लागू करना तथा ब्रिटिश शासन को मज़बूत बनाना था। प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए लिखित कानून पहले ही बना लिए गए थे। ब्रिटिश प्रशासन के तीन स्तम्भ थे।

- सिविल सर्विस
- सेना
- पुलिस

आइए, इनमें से प्रत्येक की संरचना और कार्यविधि पर संक्षेप में विचार किया जाए।

सिविल सर्विस

सिविल सर्विस का मुख्य कार्य कानून लागू करना और राजस्व की वसूली करना था। अपने सैनिक और धार्मिक कार्यों में रत सहायकों से नागरिक अधिकारियों को अलग करने के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने पहली बार (सिविल सर्विस) शब्द का इस्तेमाल किया। पहले यह ''सेवा'' केवल व्यापार तक ही सीमित थी, परंतु धीरे-धीरे यह सिविल सर्विस में परिणत हो गई।

शुरू से ही इस सेवा में पदानुक्रम की व्यवस्था थी–प्रशिक्षार्थी, लेखक, कारिंदा, कनिष्ठ व्यापारी और उसके ऊपर वरिष्ठ व्यापारी। वरिष्ठ व्यापारियों के बीच से गवर्नर जैसे उच्च पदों के लिए लोगों को चुना जाता था। यह पदानुक्रम 1839 तक चला।

इन पदों पर नियुक्ति करने का विशेषाधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को प्राप्त था। इनके द्वारा नियुक्त अधिकारी भ्रष्टाचार, घूसखोरी और अवैध निजी व्यापार में व्यस्त रहते थे। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के संरक्षण की नीति के कारण पनप रहे इस भ्रष्टाचार को कार्नवालिस ने रोकने की कोशिश की। उसने उनपर कुछ प्रतिबंध लगाए (जैसे निजी व्यापार पर रोक लगा दी गई) परंतु मुआवज़े के तौर पर उनका वेतन बढ़ा दिया। उदाहरण के तौर पर एक कलक्टर को प्रति महीना 1500 रुपया वेतन मिलता था। इसके अतिरिक्त, ज़िले से वसूले गए राजस्व का एक प्रतिशत भी उसे दिया जाता है। कम्पनी की सिविल सर्विस के अधिकारियों को जितना वेतन मिलता था, शायद उस समय विश्व की किसी भी सेवा में इतने वेतन का प्रावधान नहीं था।

इसके बावजूद, प्रशासन में भ्रष्टाचार और अक्षमता की समस्या मौजूद रही। लार्ड वेलेस्ली 1798 में भारत आया। उसने इस दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाए। उसने भारत के सिविल सर्विस के पदाधिकारियों के प्रशिक्षण का विचार सामने रखा। उसने महसूस किया कि आधारभूत प्रशिक्षण ब्रिटेन में दिया जाए और फिर भारत में उन्हें प्रशिक्षण दिया जाए। सिविल सर्विस के पदाधिकारियों को भारत के साहित्य, विज्ञान और भाषाओं की जानकारी देने के लिए 24 नवंबर, 1800 को कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई। इसके पांच साल बाद सिविल सर्विस के युवा अधिकारियों को दो साल का प्रशिक्षण देने के लिए हेलीबरी में ईस्ट इंडिया कॉलेज की स्थापना की गई। अगले पचास वर्षों तक इसी हेलीबरी कॉलेज में सिविल सर्विस के अधिकारी प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे।

अभी भी नियुक्ति का विशेषाधिकार कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स के पास ही था। वे अपने बेटों और भतीजों को इस सेवा के लिए नियुक्त करते थे।

1833 के चार्टर अधिनियम के तहत पहली बार नियुक्ति के लिए ''प्रतियोगिता'' का विचार सामने आया। पहले इस पद पर अधिकारी मनोनीत किए जाते थे। परंतु यह प्रतियोगिता काफी सीमित दायरे में होती थी और इसे मनोनयन और प्रतियोगिता का मिला-जुला रूप ही कहा जा सकता है। पहले कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को ज़रूरत से चार गुना ज्यादा प्रत्याशियों का मनोनयन करना होता था। इन मनोनीत प्रत्याशियों को प्रतियोगिता परीक्षा में बैठना होता था। इनमें से एक-चौथाई प्रत्याशियों को प्रतिष्ठित सिविल सर्विस के लिए अंतिम रूप से नियुक्त किया जाता था।

परंतु धीरे-धीरे खुली प्रतियोगिता की मांग बढ़ने लगी। अंततः 1853 के चार्टर ऐक्ट के ज़रिए कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स का मनोनयन अधिकार समाप्त कर दिया गया और अब खुली प्रतियोगिता का प्रावधान हो गया। प्रतियोगिता परीक्षा के नियमों, योग्यता और विषयों के निर्धारण के लिए मैकाले की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई, जिसे अपना सुझाव बोर्ड ऑफ कंट्रोल के सामने रखना था। 1858 में हेलीबरी स्थित कॉलेज को समाप्त कर दिया गया और अब सिविल सर्विस आयोग को प्रतियोगिता परीक्षाओं की जिम्मेदारी सौंप दी गई। प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन साल में एक बार इंग्लैंड में होना था, अतः भारतीयों के लिए इस परीक्षा में बैठना नामुमकिन था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में ही परीक्षा लिए जाने की मांग की जाने लगी।

सिविल सर्विस के पदाधिकारियों की नियुक्ति नियंत्रण कक्ष और ज़िले में हुआ करती थी। ज़िले का प्रमुख अधिकारी कलक्टर हुआ करता था, जिसकी मुख्य जिम्मेदारी राजस्व वसूल करना था। हदबंदी और राजस्व संबंधी सभी विवादों का निपटारा करने का अधिकार उसे प्राप्त था। उसकी सहायता के लिए एक तहसीलदार होता था, वह भारतीय होता था।

1831 के सुधार के बाद मैजिस्ट्रेट और स्थानीय पुलिस अधीक्षक का कार्यालय भी उसके अधीन आ गया। इससे ज़िले में उसे पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया। 1831 के बाद बड़े ज़िलों में कलक्टर और तहसीलदार के बीच डिप्टी कलक्टर की भी नियुक्ति होने लगी। धीरे-धीरे यह पद अनौपचारिक हो गया और अनुभवी भारतवासियों को डिप्टी कलक्टर बनाया जाने लगा।

आने वाले वर्षों में भारतीय सिविल सर्विस विश्व के सबसे चुस्त और शक्तिशाली नागरिक सेवा के रूप में उभर कर सामने आई। भारत में ब्रिटिश नीति निर्धारण में इसके सदस्यों ने प्रमुख भूमिका निभाई और भारत में शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को सुचारु रूप से चलाने में योगदान दिया। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत ने सिविल सेवा की व्यवस्था को आत्मसात कर लिया और यह व्यवस्था आज तक कायम है।

सेना और पुलिस

ब्रिटिश प्रशासन के अन्य दो स्तम्भों के बारे में ज्यादा बताने की ज़रूरत नहीं है। कम्पनी की सेना में भारतीय सैनिक बृहुसंख्यक में थे। 1857 में कम्पनी की सेना में 86 प्रतिशत भारतीय थे। अंग्रेज़ों ने कम खर्च को देखते हुए भारतीय सैनिकों की नियुक्ति की थी। विस्तारवादी नीति को अंजाम देने के लिए कम्पनी को एक बड़ी सेना की आवश्यकता थी इसलिए कम्पनी को मुख्यतः भारतीय सैनिकों पर ही भरोसा करना पड़ा। परंतु प्रशासन की अन्य शाखाओं के समान, सेना के पदाधिकारी अंग्रेज़ ही हुआ करते थे। एक भारतीय ज्यादा से ज्यादा सूबेदार का पद प्राप्त कर सकता था।

भारतीय शासकों को परास्त करने और ब्रिटिश साम्राज्य को फैलाने में सेना ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित करने और अन्य विदेशी शक्तियों को निकाल बाहर करने के बाद भारत पर पकड़ मज़बूत बनाए रखना सेना का मुख्य उद्देश्य हो गया। इसके अतिरिक्त भारतीय सेना ने अंग्रेज़ों के लिए रूस, फ्रांस और भारत के पड़ोसी राज्यों से युद्ध किया।

ब्रिटिश प्रशासन के तीसरे स्तंभ पुलिस का निर्माण कार्नवालिस ने किया था। अभी तक ज़मींदार के लठैत पुलिस की भूमिका निभाते आ रहे थे। अब उनके अधिकार छीन लिए गए, उन्हें निरस्त्र कर दिया गया और पुलिस बल की स्थापना की गई। इस बल पर ईस्ट इंडिया कम्पनी की सरकार का पूर्ण नियंत्रण था। पुलिस थानों में रहती थी, थाने का प्रधान दरोगा होता था। दरोगा की नियुक्ति भारतीयों के बीच से होती थी। ये थाने ज़िला न्यायाधीश के निरीक्षण में कार्य करते थे। बाद में, ज़िला के पुलिस संगठन की देखभाल करने के लिए पुलिस अधीक्षक का पद बनाया गया। अंततः पुलिस बल का संगठन सिविल सेवा के अधीन आ गया। ज़िले में कलक्टर भी पुलिस पर नियंत्रण रखता था। पुलिस का मुख्य कार्य अपराधों को रोकना और ब्रिटिश शासन के खिलाफ हो रहे षड्यंत्रों को नाकाम करना था। बाद में, बीसवीं शताब्दी में इस पुलिस बल का उपयोग बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय आंदोलन को दबाने के लिए किया गया।

24.3.3 भारतीय भागीदारी

अंग्रेज़ों ने जो न्यायिक और प्रशासनिक व्यवस्था लागू की, उसमें गौर करने की बात यह है कि किसी भी भारतीय को जिम्मेदारी का पद नहीं सौंपा गया। यह मिल के दृष्टिकोण का प्रतिफल था। इसके अलावा कार्नवालिस, जिसने इन सुधारों की शुरुआत की, को भारतीयों की कार्य-कुशलता और जिम्मेदारी पर जरा भी विश्वास नहीं था। अतः उन्हें ज्यादा से ज्यादा दरोगा या अमीन का पद दिया गया। सेना, पुलिस, सिविल सर्विस, न्यायिक और इंजीनियरिंग–सभी क्षेत्रों में भारतीयों को दूर रखने की नीति अपनाई गई। वस्तुतः 1793 में सरकारी तौर पर यह घोषित किया गया था कि 500 प्रति वर्ष से अधिक वेतन वाले पद पर अंग्रेज़ों की ही नियुक्ति होगी। अंग्रेज़ों का यह मानना था कि ब्रिटिश विचारों, संस्थाओं और प्रथाओं पर आधारित प्रशासन को अंग्रेज़ ही सुचारु रूप से संभाल सकते हैं। उस समय के अंग्रेज़ विचारकों का भी यही सोचना था कि अंग्रेज़ ही भारत को एक अच्छा प्रशासन दे सकते हैं।

1813 ई. के बाद हेस्टिंग्स के नेतृत्व में न्यायिक प्रशासन के निचले पदों के भारतीयकरण की दिशा में धीरे-धीरे कदम उठाए गए। न्यायिक व्यवस्था के प्रसार के साथ-साथ इसमें

भारतीयों की नियुक्ति की जाने लगी। इसके लिए यह तर्क दिया गया कि स्थानीय स्तर पर न्यायिक व्यवस्था को लागू करने के लिए स्थानीय लोगों की आवश्यकता है। बैंटिक ने स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल प्रशासन को ढालने के लिए भारतीयों की नियुक्ति की वकालत की। उसके अनुसार, भारतीय स्थानीय समस्याओं को बेहतर समझ सकते हैं।

प्रशासन में होने वाले खर्च के कारण भी भारतीयकरण की बात सामने आई। हेस्टिंग्स के शासन काल में जो युद्ध लड़े गए, खासकर आंग्ल-बर्मा युद्ध, उससे वित्तीय संकट पैदा हो गया। प्रशासन के प्रसार के कारण यह संकट और भी गहरा हो गया। अब प्रशासन के पदों पर अंग्रेज़ों की नियुक्ति लगभग असंभव हो गई। एक तरफ तो प्रशासन का विस्तार करना था और दूसरी तरफ ब्रिटिश पैमाने पर खर्च का वहन करना मुश्किल हो गया। अतः निचले पदों पर भारतीयों की नियुक्ति आवश्यक हो गई। वे अंग्रेज़ों की अपेक्षा सहज रूप में और सस्ते दामों पर उपलब्ध थे। इससे ऊंचे पदों पर अंग्रेज़ों की नियुक्ति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अंग्रेज़ भारत में निचले पदों पर काम करने के लिए उत्सुक नहीं थे।

भारतीयों को प्रशासन में भागीदारी देने का मुख्य कारण यही था। अंग्रेज़ों ने प्रशासन में भारतीय लोगों की भागीदारी को सार्वजनिक तौर पर स्वीकार किया और इसे न्याय, नैतिकता और स्थानीय आवश्यकता आदि का जामा पहना दिया। 1831 के एक अधिनियम के तहत बड़े पैमाने पर भारतीयों को न्यायिक प्रशासन में शामिल करने की बात की गई। आकलैंड बैंटिक का उत्तराधिकारी बनकर भारत आया। उसने भारतीय न्यायाधीशों के वेतन और शक्ति में बढ़ोत्तरी की।

परंतु यह याद रखना चाहिए कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक प्रशासन के ऊंचे पद अंग्रेज़ों के लिए सुरक्षित रहे। बीसवीं शताब्दी में भारतीय भी सुरक्षित सिविल सेवा में प्रवेश पाने लगे।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर पांच पंक्तियां लिखिए:

   i) कानून का शासन

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

   ii) कानून के समक्ष समानता

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

   iii) पुलिस

   ....
   ....
   ....
   ....
   ....

iv) सेना

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित वक्तव्यों को पढ़िए और सही (✓) और गलत (✕) का निशान लगाइए :

i) नई न्यायिक व्यवस्था के अंतर्गत नागरिक और राजस्व प्रशासन को अलग कर दिया गया।

ii) इस नई व्यवस्था के आरंभ में ही स्थापित परंपरागत और धार्मिक कानूनों को निरस्त कर दिया गया।

iii) भारतीय दंड संहिता केवल बंगाल में लागू की गई।

iv) ब्रिटिश प्रशासन के निचले पदों पर ही भारतीयों की नियुक्ति की जाती थी।

24.4 सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान भारत में एक प्रक्रिया शुरू हुई, जिसके तहत नई न्यायिक और प्रशासनिक संस्थाओं का जन्म हुआ और इन्होंने एक निश्चित स्वरूप ग्रहण किया। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान अंग्रेज़ चिंतकों ने भारतीय समस्याओं पर विचार-विमर्श किया। भारत में अंग्रेज़ों के कुछ स्वार्थ निहित थे। इन्हीं कारणों से प्रशासनिक परिवर्तन किए गए। इसके परिणामस्वरूप कानूनों की एक शृंखला सामने आई और इस कानून को लागू करने के लिए समूचे देश में एक व्यापक प्रशासनिक ढांचा निर्मित किया गया। इस ढांचे का स्वरूप आधुनिक था और यह संपूर्ण भारत में फैला हुआ था। इसका प्रभाव बीसवीं शताब्दी में उभर कर सामने आया। इसकी सहायता से अंग्रेज़ों ने भारत पर अपनी पकड़ मज़बूत की और भारत के अंदर प्रवेश करने में उन्हें मदद मिली। दूसरी तरफ, भारतीयों को एक ऐसा आधार मिला, जिसपर खड़े होकर वे ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दे सकते थे।

24.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखें उपभाग 24.2.1

2) इस उत्तर में आप ब्रिटिश हितों का उल्लेख करते हुए तदनुरूप उन्नीसवीं शताब्दी में प्रशासनिक ढांचे में हुए परिवर्तन का उल्लेख करें। देखें उपभाग 24.2.2

बोध प्रश्न 2

1) i) और ii) देखें उपभाग 24.3.1
iii) और iv) देखें उपभाग 24.3.2

2) i) ✓ ii) ✕ iii) ✕
iv) ✓